International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 12-06-2025, Accepted: 13-07-2025, Published: 28-07-2025
Volume 11, Issue 3, 2025, Page No. 27-29

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में रस विषयक औचित्य विधान (शृंगार, करुण, शान्त और वात्सल्य रस के विशेष संदर्भ में)

पुष्पेंद्र पाठक
शोधार्थी, हिंदी विभाग, गुरुनानक खालसा महाविद्यालय आर्ट्स, सायन्स और कॉमर्स, नाथलाल पारेख मार्ग, माटुंगा, मुंबई, महाराष्ट्र, भारत

सारांश
काव्य के सभी अंगो में परस्पर अनुरूपता और उस अनुरूपता से जन्म लेने वाला समन्वय आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रतिपादित औचित्य सिद्धान्त का मूल तत्व है। 'रस' काव्य का एक महत्वपूर्ण अंग है और आचार्य विश्वनाथ के अनुसार तो काव्य की आत्मा है। किन्तु 'रस' से भी काव्य के अन्य अंगों के प्रति अनुरूपता अपेक्षित होती है जो कि उसे औचित्य की परिधि में ले आती है। औचित्य के होने पर रस उचित रूप से साधारणीकृत होता है और आनंदानुभूति कराने में सक्षम हो जाता है।
औचित्य और रस के इसी परस्पर संबंध को आचार्य क्षेमेन्द्र 'रसौचित्य' का नाम देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में सभी रसों का विराट समन्वय है और लोक में उनके काव्य की स्वीकार्यता इस समन्वय में औचित्य की पुष्टि का प्रमाण है। तुलसीदास के काव्य में यूं तो सभी नौ रस बहुतायात में प्रयुक्त होते दिखाई पड़ते हैं किन्तु प्रस्तुत शोध पत्र में उनके काव्य में लक्षित होने वाले शृंगार, करुण, शान्त और वात्सल्य रस के संबंध में रसौचित्य का अनुसंधान अभीष्ट है।
गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्य का अनुशीलन करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि अपने काव्य में रसों की अभिव्यक्ति के संबंध में वे रसौचित्य के सभी पक्षों से सुविज्ञ थे।

मूल शब्दः काव्यशास्त्र, काव्यलक्षण, औचित्य, रस, वात्सल्य, भक्ति

औचित्य का तात्पर्य उचित के भाव से है। 'उच धातु'[1] में 'क्त प्रत्यय लगने से यह शब्द निष्पन्न हुआ है। काव्य के सभी अंगों में पृथक–पृथक और समग्र रूप से उचित के भाव की व्यापकता ही औचित्य कहलाती है। नाट्यप्रयोग की समग्र संरचना में एक संगति और अनुरूपता के विषय में उल्लेख करते हुए भरतमुनि लिखते हैं –

वयोनुरुप: प्रथमस्तु वेषो वेषानुरूपश्च गतिप्रचार: ।
गतिप्रचारनुगतं च पाठ्यं पाठ्यानुरूपोभिनयश्च कार्य: ॥[2]

नाट्य में वय के अनुरूप वेश, वेश के अनुरूप चाल–ढाल और चाल–ढाल के अनुरूप संवाद एवं अभिनय होना चाहिए। आचार्य भरतमुनि यहां प्रत्यक्ष रूप से उचित शब्द का प्रयोग नहीं करते हैं तथापि 'अनुरूप' शब्द के माध्यम से 'औचित्य' का ही बोध यहां पर होता है। औचित्य सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य क्षेमेन्द्र औचित्य का लक्षण करते हुए लिखते हैं:

उचितं प्रहुराचार्या: सदृश किल यस्य यत।
उचितस्य च यो भाव: तदौचित्यं प्रचक्षते।।[3]

अर्थात जो जिसके सदृश हो, जिसके जैसा हो उसे ही उचित कहा गया है और उसी भाव को औचित्य कहा जाता है। यह सादृश्यता अथवा अनुरूपता यदि काव्य के सभी अंगों में न हो तो असमंजस प्रकट होने लगता है और काव्य का स्वरूप बिगड़ जाता है। काव्यशास्त्र में औचित्य की व्यापकता को स्वीकार किया जाने का भी प्रमुख कारण सभी रूपों की यही अनुरूपता है। इस व्यापकता का दिग्दर्शन करते हुए लिखते हैं:

औचितीमनुधावन्ति सर्वे ध्वनिरसोन्नाया:।
गुणालंकृतिरीतीनां नयाश्चजुवाङ्ग्मया:।।[4]

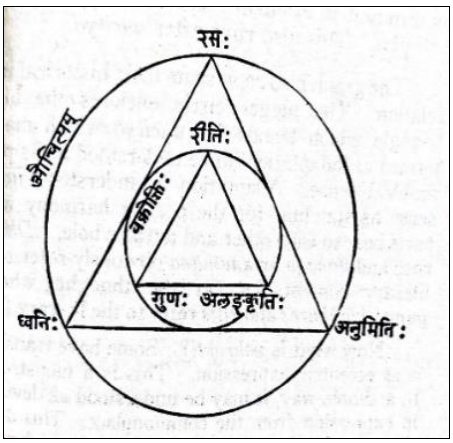

स्पष्ट है कि औचित्य काव्य के सभी तत्वों का अंगीकार करने वाला तत्व है और इस पूरे वृत्त की परिधि है।
औचित्य के काव्य संरचनागत भेद निम्नलिखित 27 तत्वों के आधार पर आचार्य क्षेमेन्द्र ने बताए हैं – पद, वाक्य, प्रबंधार्थ, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल, व्रत, तत्व, सत्व, अभिप्राय, स्वभाव, सारसंग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम, आशीर्वाद।[5] प्रस्तुत शोध–पत्र में गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य में औचित्य विधान का रसौचित्य के संदर्भ में विवेचन करना हमरे शोध पत्र का अभीष्ट है।

अध्ययन क्षेत्र

काव्य में रस एवं औचित्य

रस एवं औचित्य का आपस में गहन एवं मधुर संबंध है और दोनों एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करने का कार्य करते हैं। हालांकि काव्य रस सिद्ध ही होता है पर उसमें जीवनी शक्ति औचित्य ही है दृ ''औचित्य रस सिद्धस्य स्थिर काव्यरस जीवितम।''[6] औचित्य से संयोजित होने के उपरांत ही शृंगार आदि रस साधारणीकृत

होते हैं और आनंदानुभूति कराते हैं और इसी से काव्य में चमत्कार उत्पन्न होता है।[7] आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार औचित्य से संयुक्त होकर रस सुंदर एवं आकर्षक होकर सभी के हृदय में व्याप्त हो जाता है। जिस प्रकार मधुमास अशोक वृक्ष को अंकुरित कर देता है, उसी प्रकार यह भी सहृदय को पुलकित कर देता है।[8] अपने ग्रंथ 'औचित्य विचार–चर्चा' में रस के सभी भेदों और औचित्य के साथ उनके सह–संबंध के कई उदाहरण आचार्य क्षेमेन्द्र प्रस्तुत करते हैं जो कि रस के क्षेत्र में औचित्य की महत्ता एवं अवश्यंभाव्यता को प्रकट करता है।

गोस्वामी तुलसीदास का रस–विषयक दृष्टिकोण

भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में 'रस' की व्याख्या के संबंध में काव्यशास्त्रियों के मुख्यतः दो वर्ग हैं। एक तो उन आचार्यों का वर्ग है जिन्होंने काव्य–लक्षण का उल्लेख करते समय रस का नाम तक नहीं लिखा है एवं उनकी दृष्टि में रस काव्य का व्यावर्तक तत्व नहीं है।[9] दूसरा वर्ग उन आचार्यों का है जिन्होंने काव्य की विभिन्न विशेषताओं के साथ 'रस' को उच्च स्थान प्रदान किया है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार तो रसात्मक वाक्य ही काव्य है।[10] उक्त दोनों वर्गों के बीच में जब हम गोस्वामी तुलसीदास को देखते हैं तो पाते हैं कि भक्तकवि तुलसीदास इस क्षेत्र में भी समन्वयवादी हैं और उनके अनुसार काव्यगत सौंदर्य के लिए परंपरागत रूप से प्रसिद्ध काव्याङ्ग हाशिये पर जाते हुए दिखते हैं:

आखर अरथ अलंकृत नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना।।
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा।।
धुनि अवरेव कवित गुनजाति। भीन मनोहर ते बहु भांति।।[11]

अक्षरों, अलंकारों, अर्थों, छंदों के अनेक भेद हैं एवं उसी प्रकार रस भी अपार हैं। कविता के गुण और दोष भी भांति–भांति के हैं और ध्वनि तथा कविता के विविध भेद आदि काव्य में पाए जाते हैं।

यह तो स्पष्ट है कि काव्यशास्त्र के आचार्यों ने नौ रसों को ही स्वीकार किया है।[12] किन्तु गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार रसों की कुल संख्या दस है। स्पष्ट है कि नौ रस तो वे हैं जो सर्वविदित हैं (शृंगार, वीर, करुण, शांत, अद्भुत, हास्य, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स) तथा दसवां रस है भक्तिरस। तुलसीदास कहते हैं:

नव रस जपतप जोग विरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा।।
सम जम नियम फूल फल ज्ञाना। हरी पद रति रस वेद बखाना।।[13]

यहाँ तुलसीदास जी दसवें रस – भक्तिरस की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। भारतीय काव्यशास्त्रीय रस परंपरा के समानांतर अपने काव्यसृजन के माध्यम से दसवें रस का अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत करते हुए तुलसीदास जी रस परंपरा में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में मुख्य रूप से शृंगार, करुण, शांत और वात्सल्य रस के सर्जनात्मक प्रयोग और उनके रसौचित्य पक्ष को उद्भाषित करने का प्रयास किया जाना आवश्यक है।

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में शृंगार–रसौचित्य

तुलसीदास जी ने अपने काव्य में शृंगार रस का बहुत ही औचित्यपूर्ण और उदात्त चित्रण किया है जो कि उनके द्वारा किए गए दाम्पत्य जीवन के औचित्यपूर्ण वर्णन से स्पष्ट होता है। तुलसी का दाम्पत्य कृष्णकाव्य अथवा फारसी काव्य परंपरा का एकांतिक प्रेम नहीं है बल्कि वह तो त्याग, कर्तव्य–भावना, लोकमंगल की कामना, अनन्यता, पतिव्रत्य कि गरिमा आदि उदात्त प्रवृत्तियों का सुंदर उपवन है। तुलसीदास जी ने अपने सृजन में अश्लीलता या कुरुचिपूर्ण चित्रण किसी भी स्थान पर नहीं किया है। इसे संयोग शृंगार के एक उदाहरण से समझा जा सकता है:

संयोग शृंगार

जल को गए लखन हैं लरिका परिखौ पिय छाँह धरीक है ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायं पखरिहौं भूभुरि–डाढ़े।।
'तुलसी' रघुवीर प्रियाश्रम जानि कै बैठे विलंब लौ कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलकौ तनु बारि विलोचन बाढ़े।[14]

यहाँ राम और सीता का प्रेम वनवास के कंटकीर्ण मार्गों से गुजरकर एक संघर्षमय जीवन के मध्य प्रकट हो रहा है और यह अटूट है। यहाँ यह भी अवलोकनीय है कि राम और इस सीता के इस दाम्पत्य जीवन के वर्णन में अश्लीलता का कोई चिन्ह नहीं है और प्रेम लोक जीवन की भूमि पर आश्रित है अतएव इसे पढ़कर पाठक एक उदात्त और लोकोचित शृंगारिकता का अनुभव करता है।

वियोग शृंगार

आश्रम देखि जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना।।
हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत प्रेम पुनीता।।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी।।[15]

यहाँ पति ने पत्नी से संबंधित अंगों का निर्देश उपमानों के माध्यम से किया है जिससे निश्चयतः ही औचित्य का आविर्भाव इस काव्य में हो जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत काव्य में पति द्वारा पत्नी के लिए दुख प्रकट करने एवं उपमेयों का परिगणन न कर केवल उपमानों द्वारा ही उनकी व्यंजना करने से यहाँ बहुत ही मनोहारिता आ गई है।

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में करुण–रसौचित्य

करुण रस का स्थायीभाव शोक है। इस रस में मानवीय सहानुभूति का साधारणीकरण सर्वाधिक होता है और सर्जक–पाठक–श्रोता आदि के मध्य भाव तादात्म्य स्थापित करने की सामर्थ्य भी इसमें अधिक रहती है। यही कारण है कि काव्यसाहित्य में दुखी प्राणियों के प्रति हमारी सहानुभूति का इतना विस्तार होता है कि हम भी उसके साथ आँसू बहाने लगते हैं।[16] गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में करुणरस के अनेक प्रसंग उपस्थित होते हैं जैसे कि पुत्र वियोग में दशरथ के प्राण त्याग का दारुण दृश्य, रामवनगमन, सीता–हरण, लक्ष्मण–शक्ति आघात आदि। यहाँ करुण रस के औचित्य की दृष्टि से रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड से उदाहरण प्रस्तुत करना समीचीन होगा:

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू । कहु सुमंत्र कहं राम कृपालू ।।
कहां लखनु कहं रामु नेही। कहं प्रिय पुत्रवधू वैदेही ।।
बिलपत राउ विकल बहु भांति। भई जुग सरिस सिराति न राति ।।
X X X
सो तनु राखि करव में काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाह।।
हा जानकी लखन हा रघुवर । हा पितु हितचित चातक जलधर ।।
राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुवर बिरंह राउ गयउ सुरधाम ।।[17]

राम, सीता और लक्ष्मण के वन गमन और इस घटना से जन्में महान दुख का करुण क्रंदन प्रस्तुत अवतरण में लक्षित होता है। महाराज दसरथ को अपने ही जीवन से निर्मोह होने लगता है। साथ ही, उनका यह कथन कि ऐसे शरीर की क्या उपयुक्तता जिसने प्रेम के व्रत का निबाह नहीं किया। यहाँ अपने पुत्र एवं

पुत्रवधू के असमय एवं अकारण वन चले जाने की दारुण घटना पर महाराज दसरथ का अपने शरीर के प्रति घृणा का भाव रखना उपर्युक्त चौपाइयों में औचित्यजन्य कारुण्य का दर्शन कराता है। प्रेम के प्रण का निबाह न होने पर शरीर त्याग की आकांक्षा का प्रकट होना करुण रस की भूमि में सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है।

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में शांत–रसौचित्य

शांत रस का स्थायीभाव निर्वेद है, निस्पृहता आलंबन है, साधना, यम–नियम आदि इस रस के उद्दीपन हैं। चूंकि तुलसी के राम शान्ताकारं का स्वरूप हैं अतएव उनमें दो बातों का होना आवश्यक है (1) सांसरिक वासनाओं से निस्पृहता (2) अध्यात्मरत शान्त प्रवृत्ति। राम में निस्पृहता और शान्तचित्तता का होना उत्तम और उचित माना जाएगा। साथ ही, यदि राम के व्यक्तित्व में समस्त प्राणिजगत की मंगलकामना का प्राकट्य होता है तो वह अध्यात्म की सफलता मानी जाएगी जो कि शान्त रस में औचित्य को पूर्ण रूप से पुष्ट करेगी। तुलसीदास के राम में यह सभी तत्व सुसमन्वित होकर प्रकट होते ही है किन्तु यही सब तत्व भरत में भी उतने ही प्रकट होते हैं:

राम मातु गुर पद सिरू नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई ।।
नंदिगांव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।।
जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुशा सांथरी संवारी ।।
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा ।।
भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन वचन तजे तिन तूरी।।
अवध राजु सूर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई ।।
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।
X X X
नित पूजत प्रभु पावरी प्रीति न ह्रदयं समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भांति।।[18]

राजपाठ करने का अवसर मौजूद होने के बाद भी भरत अपने भ्रातृ प्रेम में इतने उच्च्स्थ हैं कि कि वे सांसारिक वासनाओं के प्रति निस्पृह है। साथ ही वे साधारण जीवन व्यतीत करते हुए जनसेवा में भी संलग्न हैं जो की उनकी आध्यात्मिक सफलता का परिचायक है। यहाँ भरत के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास ने शान्त रस के औचित्य को पुष्ट किया है।

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में वात्सल्य–रसौचित्य

वात्सल्य का स्थायीभाव वत्सलता अथवा स्नेह है, संतान आलंबन है, उनकी चेष्टाएं आदि उद्दीपन है। वात्सल्यरस में एक विचित्र प्रकार का अलौकिक मातृ–प्रेम विद्यमान रहता है जो कि पुत्र जन्म से पूर्व ही माता में संचरित होने लगता है। शृंगार रस की ही भांति वात्सल्य रस में भी संयोग और वियोग दो पक्ष होते हैं। साथ ही, स्वसंतति प्रेम तथा परसंतति स्नेह आदि भेद भी अपने उदात्त रूप में विद्यमान रहते हैं। वास्तव में स्वसंतति प्रेम से भी आगे परसंतति प्रेम या उदार वात्सल्य–चित्रण और भी भृत्य एवं औचित्यपूर्ण होता है।[19]

कबहुं ससि मागत आरि करै, कबहुं प्रतिबिंब निहारि डरै।
कबहुं करताल बजाइकै नाचत मातु सबै मन मोद भरै ।।
कबहुं रिसिआइ कहै हसिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं ।।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी – मन–मंदिर मे विहरै।।[20]

यहाँ बालक राम तथा उनके भाइयों के खेलने, चंद्रमा मांगने और अपनी ही परछाई देखकर भयभीत होने की लीलाओं को देखकर माताओं के ह्रदय में होने वाले आनंदातिरेक का वर्णन है। चित्रकूट में राम–भरत मिलाप के उपरांत भरत कैकई के विषय में जब अपशब्द बोलते हैं तो राम उन्हें तत्काल समझाते हुए रोक देते हैं। साथ ही, राम की बाल्यावस्था से ही कैकई का राम के प्रति अथाह प्रेम और स्नेह तुलसीदास जी के काव्य में परसंतति प्रेम के औचित्य का उत्कृष्ट उदाहरण बनकर प्रकट होता रहता है।

निष्कर्ष

तुलसी के काव्य में शृंगार, करूण, शांत, वात्सल्य आदि रसों की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है और रसौचित्य संबंधी विभिन्न पक्षों का निर्वाह समग्र रूप से दिखाई देता है। कहना न होगा कि अनेक स्थानों पर औचित्य संप्रदाय के मूल तत्वों और काव्य के सभी अंगों के समन्वय से भली–भांति परिचित ही नहीं अपितु वे उसके अंगों से अंगीकृत भी अतः हम यह कह सकते हैं कि तुलसीदास जी के काव्य में औचित्य विधान का सुंदर चित्रण प्रस्तुत हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ

1. भट्टोदीक्षित, सिद्धान्तकौमुदी, 2018 संस्करण, हंस प्रकशन, जयपुर
2. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, 2019 संस्करण, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
3. क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा, 2018 संस्करण, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
4. S. Kuppuswami Shastri, Highways and Byways of Literary Criticism in Sanskrit, 1993 Edition, The Kuppuswami Sastri Research Institute Publication, Chennai
5. राधावल्लभ त्रिपाठी, भारतीय साहित्य की नई रूपरेखा, 2022 संस्करण, सामयिक पेपरबैक्स, नई दिल्ली
6. क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा, 2018 संस्करण, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
7. वही
8. वही
9. भामह, काव्यालंकार, 2013 संस्करण, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
10. आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, 2019 संस्करण, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली
11. गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड, रामचरितमानस, 2014 संस्करण, गीता प्रेस गोरखपुर
12. डॉ. नगेंद्र, रस सिद्धान्त, 2019 संस्करण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
13. गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड, रामचरितमानस, 2014 संस्करण, गीता प्रेस गोरखपुर
14. गोस्वामी तुलसीदास, अयोध्याकाण्ड, कवितावाली, 2012 संस्करण, गीता प्रेस गोरखपुर
15. गोस्वामी तुलसीदास, अरण्यकाण्ड, रामचरितमानस, 2014 संस्करण, गीता प्रेस गोरखपुर
16. डॉ. कृष्णदेव झारी, भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत, 1971 संस्करण, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली
17. गोस्वामी तुलसीदास, अयोध्याकाण्ड, रामचरितमानस, 2014 संस्करण, गीता प्रेस गोरखपुर
18. वही
19. डॉ. कृष्णदेव झारी, भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत, 1971 संस्करण, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली
20. गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड, कवितावाली, 2012 संस्करण, गीता प्रेस गोरखपुर